Term-End Examination December, 2024

BPSE-143: भारत में राज्य राजनीति

MOST IMPORTANT QUESTIONS (HINDI)

MUST WATCH TO SCORE GOOD MARKS

PART-1

कांग्रेस प्रणाली के पतन का विश्लेषण कीजिए ।

"कांग्रस सिस्टम" वह अवधि थी जब भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) प्रमुख राजनीतिक पार्टी थी और देश की राजनीति पर इसका प्रभुत्व था। यह सिस्टम 1960 के दशक और 1970 के दशक में गिरने लगा।

1. **आंतरिक विवाद**: कांग्रेस पार्टी में 1964 में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद आंतरिक संघर्ष बढ़ने लगा। पार्टी में नेतृत्व के लिए कई नेता आपस में भिड़ गए। नेहरू के बाद मजबूत नेतृत्व की कमी के कारण पार्टी में उलझन और विभाजन हुआ।
2. **क्षेत्रीय पार्टियों का उभार**: समय के साथ विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियां मजबूत होने लगीं। ये पार्टियां कांग्रेस से अधिक स्थानीय मुद्दों पर ध्यान देने लगीं, जिससे कांग्रेस का देशभर में प्रभाव कमजोर हुआ।
3. **आर्थिक समस्याओं का समाधान न होना**: 1960 के दशक के अंत में भारत आर्थिक संकट का सामना कर रहा था, जैसे खाद्यान्न की कमी, महंगाई और गरीबी। कांग्रेस पार्टी जो समृद्धि का वादा करती थी, वह इन समस्याओं का समाधान नहीं ढूंढ पाई, जिसके कारण जनता का समर्थन घटने लगा।
4. **नए नेताओं का उदय**: 1966 में इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं, लेकिन उनका नेतृत्व शैली समय के साथ बहुत से लोगों को अस्वीकार्य लगने लगा। 1975 में आपातकाल लागू करने (जिससे नागरिक स्वतंत्रताएं निलंबित हो गईं) के फैसले ने व्यापक विरोध को जन्म दिया।
5. **भ्रष्टाचार और गड़बड़ी**: कांग्रेस में भ्रष्टाचार और गड़बड़ी के आरोपों ने जनता का विश्वास खो दिया। खासकर इंदिरा गांधी के समय में कांग्रेस के खिलाफ यह आरोप बहुत ज्यादा बढ़े, जो पार्टी के गिरने के मुख्य कारणों में से एक था।
6. **राजनीतिक विपक्ष का उभार**: नई विपक्षी पार्टियां और आंदोलन, जैसे जनता पार्टी, उभरे और लोकप्रिय होने लगे, खासकर 1977 के बाद आपातकाल के विरोध में। इन विपक्षी दलों ने धीरे-धीरे कांग्रेस के प्रभाव को चुनौती दी।

Scholarly Minds

संक्षेप में, कांग्रस सिस्टम के गिरने के कारण थे—नेतृत्व संघर्ष, आर्थिक समस्याएं, क्षेत्रीय पार्टियों का बढ़ता प्रभाव, भ्रष्टाचार और गड़बड़ी, और मजबूत राजनीतिक विपक्ष का उभार। 1980 के दशक तक, कांग्रेस अब पहले जैसी प्रमुख पार्टी नहीं रही थी।

पूर्वोत्तर भारत में जातीय राजनीति की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

उत्तर-पूर्व भारत में जातीय राजनीति वह राजनीति है जो इस क्षेत्र के जातीय पहचान, संस्कृति और भाषाओं से प्रभावित होती है। उत्तर-पूर्व भारत में विभिन्न समुदायों के लोग रहते हैं जिनकी अपनी विशेष परंपराएं और पहचान हैं, और इन भिन्नताओं का राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

यहाँ कुछ मुख्य विशेषताएँ दी गई हैं:

1. **विविध जातीय समूह**: उत्तर-पूर्व भारत में असमिया, नागा, मिजो, मणिपुरी और कई आदिवासी समुदाय जैसे विभिन्न जातीय समूह रहते हैं। हर समूह की अपनी भाषा, संस्कृति और जीवनशैली है, जो राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
2. **स्वायत्तता की मांग**: उत्तर-पूर्व भारत के कई जातीय समुदाय अपनी पहचान, संस्कृति और संसाधनों की रक्षा के लिए अधिक स्वायत्तता या अलग राज्य की मांग करते हैं। यह मांग अक्सर केंद्र सरकार द्वारा उपेक्षित या दबाए जाने की भावना से उत्पन्न होती है।
3. **क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ**: उत्तर-पूर्व भारत में कई क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ हैं जो विशिष्ट जातीय या समुदायिक समूहों के हितों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। ये पार्टियाँ अक्सर अपनी जनता के अधिकारों और कल्याण के लिए लड़ती हैं, जैसे असम गण परिषद (Assam Gana Parishad) और मिजो नेशनल फ्रंट (Mizo National Front)।
4. **जातीय संघर्ष**: समुदायों की विविधता के कारण, इस क्षेत्र में कई संघर्ष हुए हैं, खासकर ज़मीन, संसाधनों और राजनीतिक शक्ति को लेकर। कुछ जातीय समूह अपने अधिकारों की मांग करने के लिए हिंसा या विरोध प्रदर्शनों का सहारा लेते हैं।
5. **गुरिल्ला आंदोलन**: नागालैंड, मणिपुर और असम जैसे राज्यों में कुछ जातीय समूहों ने भारतीय सरकार से स्वतंत्रता या अधिक स्वायत्तता की मांग करने के लिए सशस्त्र आंदोलनों का आयोजन किया। ये आंदोलन ऐतिहासिक अन्याय या हाशिये पर होने की भावना से उत्पन्न होते हैं।
6. **सांस्कृतिक पहचान और संरक्षण**: इस क्षेत्र में जातीय राजनीति का एक बड़ा हिस्सा प्रत्येक समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को बचाने और बढ़ावा देने की इच्छा से जुड़ा है। भाषा, परंपराएँ और सांस्कृतिक प्रथाएँ राजनीतिक आंदोलनों के केंद्र में होती हैं, क्योंकि लोग यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि उनके धरोहर की रक्षा हो सके।
7. **केंद्र सरकार की भूमिका**: भारतीय सरकार ने उत्तर-पूर्व के समुदायों की मांगों का जवाब सैन्य कार्रवाई, शांति समझौतों और कुछ राज्यों को विशेष स्थिति देने (जैसे नागालैंड के लिए अनुच्छेद 371A) के रूप में दिया है। हालांकि, इन उपायों ने हमेशा समस्याओं का पूरी तरह से समाधान नहीं किया है, जिसके कारण संघर्ष जारी रहते हैं।

Scholarly Minds

सारांश में, उत्तर-पूर्व भारत में जातीय राजनीति क्षेत्र की विविधता से आकारित होती है, जिसमें समुदाय अधिक स्वायत्तता, अपनी पहचान की रक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं। इससे शांति और हिंसा दोनों प्रकार के आंदोलनों का जन्म हुआ है, और केंद्र सरकार अक्सर इन मुद्दों को हल करने के प्रयासों में शामिल रही है।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की स्वायत्तता मांगों का परीक्षण कीजिए।

स्थानीय स्व-शासन का विकास उस प्रक्रिया को कहा जाता है जिसके माध्यम से स्थानीय समुदायों को अपने मामलों को प्रबंधित करने और निर्णय लेने का अधिकार दिया गया। भारत में स्थानीय स्व-शासन का विकास समय के साथ हुआ है, जो प्राचीन काल से लेकर आज तक फैला हुआ है। इसका सरल तरीके से वर्णन इस प्रकार है:

1. प्राचीन और मध्यकालीन काल:

- **प्राचीन भारत**: प्राचीन भारत में, स्थानीय शासन समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। गाँवों में आमतौर पर **पंचायतों** द्वारा शासन किया जाता था, जो सम्मानित बुजुर्गों का समूह होता था। ये पंचायतें विवादों को हल करती थीं, संसाधनों का प्रबंधन करती थीं और समुदाय की भलाई सुनिश्चित करती थीं।
- **मध्यकालीन काल**: मध्यकाल में, स्थानीय स्व-शासन पर अलग-अलग राज्यों के शासकों का प्रभाव था। जबकि राजाओं और उनके प्रतिनिधियों के पास बड़े क्षेत्रों का नियंत्रण था, स्थानीय गाँवों और शहरों में अपना प्रशासनिक तंत्र था। हालांकि, ये तंत्र आधुनिक व्यवस्था की तरह संगठित और औपचारिक नहीं थे।

2. ब्रिटिश औपनिवेशिक काल:

- **ब्रिटिश प्रभाव**: ब्रिटिश शासन के तहत भारत में एक केंद्रीकृत शासन प्रणाली बनाई गई थी। स्थानीय स्व-शासन को कम करके रखा गया और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा शीर्ष स्तर से निर्णय लिए जाते थे।
- **स्थानीय निकायों का गठन**: 19वीं सदी में, ब्रिटिशों ने शहरी क्षेत्रों के लिए कुछ स्थानीय निकायों की शुरुआत की, जैसे नगरपालिकाएँ, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता और अन्य सेवाओं का प्रबंधन करती थीं। इन निकायों की शक्तियाँ सीमित थीं।
- **इंडियन काउंसिल्स एक्ट 1861**: इस अधिनियम ने कुछ स्थानीय परिषदों के गठन की अनुमति दी, हालांकि इनकी शक्तियाँ सीमित थीं और महत्वपूर्ण निर्णयों पर उनका कोई प्रभाव नहीं था।
- **मिंटो-मॉर्ले सुधार (1909)**: इन सुधारों ने भारतीयों को स्थानीय शासन में अधिक भागीदारी का अवसर दिया, लेकिन नियंत्रण फिर भी ब्रिटिश हाथों में था।
- **मॉन्टागू-चेल्म्सफोर्ड सुधार (1919)**: 1919 के सरकारी भारत अधिनियम ने स्थानीय स्व-शासन में कुछ अधिक स्वायत्तता दी, खासकर शहरी क्षेत्रों में, लेकिन यह नियंत्रण फिर भी ब्रिटिश अधिकारियों के पास था।

3. स्वतंत्रता के बाद (1947 के बाद):

- **भारतीय संविधान (1950)**: भारत के स्वतंत्र होने के बाद, भारतीय संविधान ने स्थानीय स्व-शासन की नींव रखी। हालांकि, राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय शासन पर जोर नहीं था।

Scholarly Minds

- **पंचायती राज व्यवस्था (1950 के दशक)**: 1950 के दशक में भारत ने **पंचायती राज प्रणाली** को लागू किया, जिसका उद्देश्य गाँवों में स्थानीय निकायों को अधिक शक्ति देना था ताकि वे स्थानीय मुद्दों पर निर्णय ले सकें। यह प्रणाली लोकतंत्र को आधार स्तर पर बढ़ावा देने का एक तरीका थी।
- **73वां और 74वां संविधान संशोधन (1992)**: ये संशोधन भारतीय स्थानीय स्व-शासन को सशक्त बनाने के लिए महत्वपूर्ण थे।
    - **73वां संशोधन** ने ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों के लिए संवैधानिक आधार प्रदान किया। इसने पंचायतों के लिए नियमित चुनाव अनिवार्य किए, ताकि स्थानीय लोग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें।
    - **74वां संशोधन** शहरी स्थानीय निकायों, जैसे नगरपालिकाओं, को अधिक जिम्मेदार और जवाबदेह बनाने के लिए था, साथ ही शहरी शासन के लिए नियमित चुनाव सुनिश्चित करने के लिए।

4. वर्तमान काल (आधुनिक युग):

- आज, भारत में **ग्रामीण और शहरी दोनों** प्रकार के स्थानीय स्व-शासन निकाय हैं, जो इस प्रकार संरचित हैं:
    - **पंचायतें (ग्रामीण क्षेत्रों के लिए)**: ये तीन स्तरों पर संरचित होती हैं—गाँव, मध्यवर्ती, और जिला स्तर।
    - **नगरपालिकाएँ (शहरी क्षेत्रों के लिए)**: ये नगरों और शहरों को नियंत्रित करती हैं, और इनका ध्यान शहरी योजनाओं, बुनियादी ढाँचे, और सेवाओं पर होता है।
- स्थानीय स्व-शासन निकायों के पास शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय बुनियादी ढाँचे और कल्याण कार्यक्रमों जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण शक्तियाँ होती हैं। वे विभिन्न सरकारी योजनाओं और विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार होते हैं।

चुनौतियाँ और सुधार:

- स्थानीय स्व-शासन के विकास के बावजूद, इसमें कई समस्याएँ हैं, जैसे **वित्तीय संसाधनों की कमी**, **राजनीतिक हस्तक्षेप**, और **कार्यक्रमों के खराब कार्यान्वयन**।
- स्थानीय शासन को सशक्त बनाने के लिए निरंतर सुधारों की आवश्यकता है, ताकि अधिक शक्तियाँ स्थानीय निकायों को दी जा सकें और वे अधिक जवाबदेह बन सकें।

निष्कर्ष:

भारत में स्थानीय स्व-शासन का विकास प्राचीन काल की अनौपचारिक प्रणालियों से लेकर आज की औपचारिक संरचनाओं तक हुआ है। समय के साथ यह समझ बढ़ी है कि स्थानीय समुदायों को अपने मामलों को स्व-शासन देने की आवश्यकता है, खासकर पंचायती राज प्रणाली और शहरी शासन के माध्यम से। इन विकासों ने लोकतंत्र को लोगों तक पहुँचाया है, जिससे आधार स्तर पर बेहतर भागीदारी और निर्णय-निर्माण सुनिश्चित हुआ है।

Scholarly Minds